भारत के
ट्रेड यूनियन आन्दोलन
की समस्याएं

छत्तीसगढ़ माइन्स श्रमिक संघ
का एक लेख

शंकर गुहा नियोगी

शहीद शंकर गुहा नियोगी यादगार समिति

छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा

पुर्नमुद्रण : जनवरी 2004

सहायतार्थ राशि : 2/- रूपये

प्रकाशक : छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा
सी.एम.एम.एस. ऑफिस, दल्लीराजहरा
जि. दुर्ग (छ.ग.) पिन - 491 228

मुद्रक : विजय प्रिंटिंग प्रेस
बालोद, जिला दुर्ग (छ.ग.)

उद्योग और भारत

किसी भी देश के विकास के लिए उद्योग की स्थापना एवं निरंतर विकास होना जरुरी है। पिछ ली शताब्दी के अंत तक भारत में औद्योगिक विकास उल्लेखनीय नहीं रहा। अंग्रेज लौह इस्पात, भारी मशीन, कपड़ा, दवाई आदि इंगलैण्ड से मंगाकर अपना धंधा चलाते थे। मुनाफा बटोरना अंग्रेजों का एकमात्र उद्देश्य था।

1947 के बाद अंग्रेज तो चले गये, लेकिन उनके धंधे ज्यों के त्यों रह गये। उसके बाद विभिन्न बहुराष्ट्रीय कंपनियां विशेष रुप से अमेरिकी, जापानी, फ्रांसिसी एवं जर्मन कंपनियों ने भारत के उद्योग धंधो में हाथ डाले। हत्यारी युनियन कार्बाइड उनमें से एक है।

वर्तमान समय में भारत के उद्योग धंधे मूलत: तीन प्रकार के मालिक वर्ग के कब्जे में है।

(क) सार्वजनिक क्षेत्र के मालिक :

इस देश में वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के तहत 40 हजार करोड़ रुपये से भी अधिक लागत के कल कारखाने, उद्योग धंधे चल रहे हैं। इस्पात, बिजली, कपड़ा,रेल, कोयला तेल आदि उद्योग में ज्यादातर सार्वजनिक क्षेत्र का कब्जा है।

(ख) बहुराष्ट्रीय कम्पनियां

विदेशी कम्पनियां, विशेष रुप से साम्राज्यवादी देशों के पूंजीपतियों ने सारी दुनिया के उद्योग धंधो पर अपना कब्जा जमा कर रखा है। सिर्फ समाजवादी देशों में ही इनके शिकंजे कमजोर है। साम्रज्यवादी दुनिया के मालिक वर्ग हमारे देश में भी इंजीनियरिंग दवाई, आटोमोबाइल, चाय, रबर, केमिकल्स आदि क्षेत्रों में उद्योग धंधा चला रहे हैं।

(ग) इजारेदार पूंजीपति :

तीसरे महत्वपूर्ण पूंजीपति हमारे ही देश के इजारेदार पूंजीपति हैं। बिरला, टाटा, डालमिया, किलोस्कर, महेन्द्र आदि इनमें हैं। देश में टेक्सटाइल्स, केमिकल्स, इस्पात आदि अनेकोनेक उद्योग धंधो में इनका कब्जा है।

इसके अलावा कुछ पूंजीपति अपने उद्योग धन्धे के लिए जी तोड़ कोशिश तो कर रहे हैं लेकिन इन्हे अधिक कामयाबी नहीं मिल पा रही है। ये असंगठित रहने

ह कारण सरकार व बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शोषण की नीति का कुफल भोग रहे हैं और अपना गुस्सा अपने ही उद्योग में कार्यरत मजदूरों के उपर बताते रहते हैं।

छत्तीसगढ़ में दिन ब दिन उद्योग का विकास होता जा रहा है। औद्योगिक विकास की गुंजाइश भी प्रचुर है। जितना विकास अब तक हो चुका है वह भी कम नहीं है।

यह सवाल बार बार उठता रहता है कि छत्तीसगढ़ में औद्योगिक विकास के साथ साथ तालमेल रखकर छत्तीसगढ़ की जनता का विकास क्यों नहीं हो रहा है। इस सवाल का जवाब संगठित मजदूर वर्ग ही दे सकता है। संगठित मजदूर वर्ग अगर अपने ट्रेड युनियन संगठन को एक स्कूल और हथियार के रुप में इस्तेमाल करें और संघर्ष एवं रचना के सिद्धांत पर आधारित अपने कार्यक्रम को आगे बढ़ाता जाये, तब ही छत्तीसगढ़ का मजदूर छत्तीसगढ़ के विकास के साथ अपना संपर्क बना सकेगा। स्वार्थी पूंजीपति वर्ग के किराये का टट्टू बनकर नहीं नाचेगा, हर क्षेत्र में मजदूरों का दबदबा प्रतिष्ठित हो सकेगा।

> छत्तीसगढ़ के औद्योगिक मजदूर की गुणात्मक समाजिक परिवर्तन में एक निर्णायक इस्पाती नेतृत्व देने में कामयाब हो सकते हैं।

अब तक विभिन्न उद्योगों में फौलादी ट्रेड यूनियन नेतृत्व क्यों नहीं है ?

1) देश की जनता वर्गों❖ और राष्ट्रीयताओं❖ में बंटी हुई है। हर वर्ग के अपने अलग अलग वर्ग हित होते हैं और विभिन्न राष्ट्रीयताओं के हित भी अलग होते हैं। अब तक भारत में वैज्ञानिक पद्धति और विचारधारा के अनुसार विभिन्न राष्ट्रीयतओं को जनता के बीच एकता के आधार नहीं बनाया गया है। इस कार्य में ट्रेड यूनियनों की विशेष भूमिका को भी नजर अंदाज किया गया है।

2) शोषक वर्ग अपनी बनाई व्यवस्था के जरिये ही जिन्दा है। शोषण पर आधारित शोषक वर्ग की व्यवस्था को, सिर्फ उस क्षेत्र विशेष की जनता की जरुरत के मुताबिक, क्षेत्र में उपलब्ध कच्चे माल का भरपूर उपयोग करते हुये, एक नई

❖ जैसे मजदूर, किसान, पूंजीपति वर्ग, छोटा व्यवसायी वर्ग, जमींदार वर्ग आदि।

❖ जैसे – छत्तीसगढ़ी, उड़िया, मराठी, तेलगू, बंगाली, तमिल, बिहारी, पंजाबी, झारखंडी, उत्तराखंडी आदि। भारत में लगभग 42 ऐसे राष्ट्रीयता समुदाय हैं।

उत्पादन पद्धति के विकास के जरिये उस क्षेत्र की जनशक्ति के बलबूते पर वैकल्पिक व्यवस्था कायम करने के लिए किए गये संघर्ष के द्वारा ही ध्वस्थ किया जा सकता है। ट्रेड यूनियनों ने इस विषय पर कभी भी सूजनात्मक दिशा देने के लिए सोचा ही नहीं।

3) कुछ वर्ग मौजूदा व्यवस्था को बनाये रखना चाहते हैं, बाकी वर्ग इस व्यवस्था को खत्म करना और नई व्यवस्था को कायम करना चाहते हैं। इन परस्पर विरोधी वर्ग समूहों में जीत किसकी होगी, किसकी बात चलेगी, इसका साफ जवाब है कि जो वर्ग बुद्धि और भौतिक शक्ति में ज्यादा ताकतवर होगा, विजय उसी की होगी।

वर्तमान समय में निश्चित रुप से पूंजीपति वर्ग तथा सामंतवादी तत्व ही अधिक बुद्धिमान और शक्ति संपन्न है। उनकी बुद्धि का मुकाबला करने के लिए हमें अपनी बुद्धि का विकास करना होगा। इसके लिए चार कार्य साथ-साथ जरुरी है - वर्ग संघर्ष, उत्पादन संघर्ष, वैज्ञानिक प्रयोग और इतिहास का अध्ययन। हमारी शक्ति के विकास के लिए हमें व्यापक जनता को जगाने का काम लगातार करना होगा।

आज का ट्रेड युनियन आन्दोलन न केवल इस पद्धति का प्रयोग नहीं करता बल्कि उसे ये बातें नापसन्द भी है।

जहां पूंजीपति वर्ग एवं हर प्रकार के साम्राज्यवादी इतिहास की हर घटना और वस्तुगत परिस्थिति से सीख लेते हैं, वहां आज भारत के ट्रेड युनियनवादी लोग उसे दोहराने की सोचते हैं, यह तरीका अवैज्ञानिक है।

4) हमारे जैसे पिछड़े हुये देश में पूंजीपति वर्ग मजदूरों को ट्रेड युनियन का अधिकार निम्नलिखित कारणों से देता है :-

क) दमन और शोषण से त्रस्त मजदूरों द्वारा अचानक बगावत करने की आशंका को निर्मूल करने के लिए।

ख) उद्योगों में मालिक वर्ग द्वारा तय अनुशासन के दमन मूलक नियमों व हर प्रकार के कानूनी बंधन को ट्रेड युनियन के नेताओं के माध्यम से मजदूरों को स्वेच्छापूर्वक मनवाने के लिए।

ग) सिर्फ आर्थिक संघर्ष के लिए मजदूरों को प्रोत्साहित करके मजदूरों

की सोच को सिर्फ उसके उद्योग तक ही सीमित रखने के लिए,

घ) सह अस्तित्व की नीति को सभी स्तरों पर प्रचारित और प्रतिष्ठित करने के लिए।

आज भारत की केन्द्रीय ट्रेड युनियनें मालिक वर्ग के इन्ही उद्देश्यों को पूरा करने में लगी हुई है।

5) विभिन्न राष्ट्रीयताओं के हमारे देश में, नौकरी की भर्ती नीति भी ट्रेड युनियनें के मजबूत नहीं होने का एक प्रमुख कारण है।

अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने 1917 की अक्टूबर क्रांति से उपयोगी शिक्षा हासिल की थी। उद्योग में उसकी भर्ती की नीति भी भारत में इस प्रकार की क्रांति की सम्भवनाओं पर रोक लगाने के लिए तय की गई थी। कहीं सर्वहारा के नेतृत्व में भारत में जनवादी लोकतांत्रिक क्रांति सम्पन्न न हो जाय इसके लिए उन्होंने काफी दूरदर्शिता दिखाई। किसी खास क्षेत्र में स्थित उद्योगों में उस क्षेत्र के लोंगों की भर्ती न करके अन्य क्षेत्र के लोगों को भर्ती किया गया। मध्यप्रदेश व झारखण्ड की कोयला खानों में सेन्ट्रल रिक्रूटमेंट आफिस के माध्यम से गोरखपुरी मजदूरों को भर्ती किया गया। आसाम और बंगाल के चाय बगानों में छत्तीसगढ़ी और झारखण्डी मजदूरों की भर्ती की गई। झारखण्ड और बंगाल के कोयला खदानों में छत्तीसगढ़ी और गोरखपुरी मजदूरों को भर्ती किया गया।

क्षेत्रीय विकास में क्षेत्रीय जनता की भागीदारी ही राष्ट्रीय विकास की गारंटी है। क्षेत्रीय विकास में बाहर से आये हुये मजदूर दिलचस्पी नहीं लेते क्योंकि उनकी राष्ट्रीयता, संस्कृति तथा आर्थिक पृष्ठभूमि अलग है। इस तरह चूंकि उद्योगों में अधिकांश मजदूर बाहरी क्षेत्रों से आये हुए हैं, इसलिए मजदूर वर्ग क्षेत्रीय विकास की मुख्य धारा से हट जाते हैं, नेतृत्व देना तो दूर की बात। चूंकि इन मजदूरों की आर्थिक सामाजिक जड़ें कहीं और है, इसलिए वे स्थानीय विकास के मुद्दों से जुड़ नहीं पाते। नतीजा होता है एक बहुत ही असंतुलित और विकृत विकास।

भारत के विभिन्न उद्योग कारखानों में गोरे अंग्रेजों के इस तरीके को काले अंग्रेजों ने भी वफादारी के साथ अपनाया है। भिलाई के 90 प्रतिशत मजदूर दूसरे क्षेत्रों से आये हुये हैं, बोकारों में दक्षिण बिहार से आये मजदूरों की संख्या 20 प्रतिशत से

अधिक नहीं है। दुर्गापुर इस्पात कारखाने में स्थानीय लोगों की कमी न हो वहां के ग्रामांचल में झारखण्ड की आवाज को जोरदार किया है टाटा के कारखाने में भी आपको बहुत ही कम झारखण्डी मिलेंगे।

एक तरफ तमाम सुविधाओं से भरपूर इस्पात नगरी, मानो एक गमला में सुंदर सा गुलाब का पौधा है, दूसरी तरफ घोर दरिद्रता के अंधकार में डुबे हुए गांव। एक तरफ अधिक वेतन पाने वाले संगठित मजदूर और दूसरी ओर गांव में भूखमरी के शिकार खेतिहर मजदूर गरीब किसान और बेरोजगारो की फौज। इसी प्रक्रिया से शासक वर्ग मजदूरों को दो टुकड़ों में बांटता है। अफसर और मेनेजमेंट के लोग करीब सभी बाहर के लोग होते हैं। ये क्षेत्रीय विकास में कोई दिलचस्पी तो लेते ही नहीं बल्कि वे जान बूझकर क्षेत्र की प्रगति के लिए जरुरी साधनों को बरबाद कर देते हैं।

इन कारखानों में ट्रेड युनियन तब जमती है जब उत्पादन शुरु हो जाता है, इसलिए इन उद्योगों में ट्रेड युनियन गंदे पानी में कीड़ों की तरह बिलबिलाते रहते हैं। ऐसी स्थिति कायम करने में केन्द्रीय ट्रेड युनियनें सरकार और नौकरशाहों को भरपूर मदद करती है।

6) ट्रेड युनियनों का कार्यक्रम भी अन्य राजनीतिक सिद्धांतो की तरह वैचारिक दिवालियापन का शिकार है। ट्रेड युनियन मजदूरों का संगठन होता है। मजदूर वर्ग का वैज्ञानिक सिद्धांत उनको उस नये प्रकार की राजसत्ता कायम करने के लिए प्रेरित करता है, जो वर्तमान व्यवस्था का कब्र पर खड़ी की गई हो, यह सिद्धांत पुराने को तोड़ने का और नये का निर्माण करने का राजनीतिक सिद्धांत है। ट्रेड युनियन से उम्मीद की जाती है कि वह इसी सिद्धांत की रोशनी में काम करेगी। परन्तु वर्तमान व्यवस्था ऐसी ट्रेड युनियन को स्वीकार नहीं कर सकती, जो वर्तमान व्यवस्था की कब्र खोदे। जब वह पायेगी की ट्रेड युनियन का व्यवहार व्यवस्था के खिलाफ है, तो वह ट्रेड युनियन कानून को ही समाप्त कर देगी। ट्रेड युनियन रहेगा या नहीं रहेगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि ट्रेड युनियन का सिद्धांत समाज की सबसे प्रतिक्रियावादी धृणित शक्ति को अपना दुश्मन करार देकर बाकी वर्गो के साथ तालमेल का नया सैद्धांतिक आधार बनता या नहीं, प्रतिक्रियावादियों के आपसी द्वन्द को तेज करने में

मदद कर और एक लचीली कार्य पद्धति पर अमल करते हुये हर मामले में अगुवा भुमिका स्वीकार करता है या नहीं, एक बुनियादी सामाजिक परिवर्तन के लिए मजदूर वर्ग को जागरुक करता है या नहीं।

आज की केन्द्रीय ट्रेड युनियनें इस दिशा में किसी भी प्रकार की नीति अपनाने के बदले, सिर्फ सरकार के राजनीतिक दबाव का इस्तेमाल करके मैनेजमेंट के मदद से ट्रेड युनियन नाम की दुकानदारी चला रही है। चाहे बाहरी रुप कुछ भी हो सभी केन्द्रीय ट्रेड युनियनें दलाली की चैम्पियनशिप हासिल करने के होड़ में लगी हुई है।

7) राजनीति "पंडितों" की स्वेच्छाचारिता के कारण भी भारत में ट्रेड युनियन आन्दोलन सही ढंग से विकसित नहीं हो पाया है। अंग्रेजों के जमाने में "एटक" युनियन के कम्युनिस्ट हिस्से ने समाजवादी क्रांति को आवाज बुलन्द करके उग्रवादी लाईन चलाकर मजदूर आन्दोलन का सर्वनाश किया (शोलापुर का इतिहास उल्लेखनीय है)। 1946-47 में भी बी.टी. रणदिवे ने समाजवादी क्रांति कहकर तेलंगाना आन्दोलन को गुमराह किया। एटक युनियन का कांग्रेसी हिस्सा उधर उद्योगों में संघर्ष पनपने न देकर मालिक वर्ग की तरफदारी करता रहा। इसी हिस्से ने स्वतंत्रता के बाद इंटक युनियन बनकर सरकारी ट्रेड युनियन का रुप अपनाया। आज कम्युनिस्ट और मार्क्सवादी पार्टियों की युनियनें इंटक की 'दिलदार' भावना से ओत प्रोत हो चुका है। चारु मजूमदार के नेतृत्व में नक्सलवादी संघर्ष ने मजदूर वर्ग में नई आशा का संचार किया था, लेकिन उन्होंने भी बाद में ट्रेड युनियन में संशोधनवादी नेतृत्व के खिलाफ संघर्ष न कर "ट्रेड युनियन छोड़ दो" वाले पलायनवादी सिद्धांत की प्रतिष्ठा की।

स्वेच्छाचारी इन राजनैतिक पंडितों की कृपा से कभी भी ट्रेड युनियन भारत की मेहनतकश जनता की इच्छा के मुताबिक अपने को ढाल नहीं पाया। जो आया वह पछताया, और जो नहीं आया वह भी पछताया। आज भी हर एक ट्रेड युनियन के सदस्य मजदूर अपने व्यक्तिगत हित और अपने उद्योग मजदूरों के हित को देश की आम जनता के हितों के साथ मिलकर यानि साधारण को विशेष के साथ जोड़कर देख नहीं पाये। पश्चिम बंगाल के कारखानों में यह कहावत प्रचलित है कि "वोट के

तिरंगा झन्डा पेट के लिए लाल झन्डा'' इसी सिलसिले में उनकी नई उपलब्धी है ''चोट के लिए सगा भाई''

भारत की ट्रेड युनियन राजनैतिक पार्टियों पर प्रभाव डाल नहीं पायी है, बल्कि निराशाग्रस्त नेताओं ने ट्रेड युनियनों पर हावी होकर सारे मजदूर आन्दोलन को भंवरजाल में फंसा दिया है।

8) ट्रेड युनियन मजूदर वर्ग का हथियार है। ठोस ढंग से इस हथियार का प्रयोग करने की विधि है - जनवादी केन्द्रीयता। संघर्ष का निर्णय, संगठन से संबंधित मामलों में फैसला, जनवादी तरीके से करना चाहिये, एवं इन फैसलों को केन्द्रीयता के मातहत लागू करना चाहिये। कभी कभी भारी संख्या में मौजूद या दूर दूर तक छितराये हुए मजदूरों में सामान्य ढंग से इस विधि का प्रयोग करने में दिक्कत आती है। इस स्थिति में विभिन्न इकाइयों में व्यापक चर्चा चलाकर ''जनता से जनता को'' की भागीदारी और समस्या के प्रति उनकी जागरुकता का आधार कायम रह सकता है।

आज की तमाम केन्द्रीय ट्रेड युनियनें इस पद्धति का प्रयोग नहीं करती है। वहां निर्णय उपर से थोप दिया जाता है। वास्तविक समस्या, मजूदर वर्ग की विचारधारा, अत्याचारी ताकतों द्वारा निर्दय दमन आदि के विषय में नेतृत्व लापरवाह रहता है। ये युनियन वाले श्रम कानून पर, श्रम कानून लागू करने वाले शोषक वर्गो की मशीनरी व कानूनी व्यवस्था के मामलों की जरुरतों पर अधिक ध्यान देते हैं।ये लोग इन मामलों में मजूदर वर्ग की अज्ञानता और निस्पृहता का लाभ उठाकर नौकरशाहों यानी सिर्फ केन्द्रीयता की पद्धति से तमाम मामलों का निराकरण या निपटारा करते हैं। इसी प्रकार आज की ट्रेड युनियनें एक भयावह स्थिति पैदा कर चुकी है। इससे ट्रेड युनियनों को बनाये रखने में पूंजीपतियों की जरुरतें भी पूरी नहीं हो रही है, मेहनतकशों के हथियार के रुप में ट्रेड युनियन का इस्तेग्राल करना तो दूर की बात है।

मजदूरों पर ट्रेड युनियन को कोई प्रभाव नहीं रहता है, मजदूर ट्रेड युनियन के सदस्य नहीं बनते है न ही सदस्यता शुल्क देते हैं। काल्पनिक नामों से सदस्यता रजिस्टर भरे रहते हैं। एक से अधिक युनियन एक मजदूर की सदस्यता का दावा करते हैं। मजदूर हंसता है कि उसने विभिन्न युनियनों को बेवकूफ बना दिया और युनियन

वाले हंसते हैं कि मजदूर बेवकूफ बन गया और पूंजीपति इन दोनों की बेवकूफी पर हंसता है और खुद को अधिक सुरक्षित महसूस करता है। मजदूरों की मामूली से मामूली समस्या का निपटारा भी ठेके में होता है। इस नौकरशाही तरीके से मालिक का उद्देश्य पूरा न होने पर भी वह खुश रहता है। मालिक मजदूर में से 10-20% "लायक" मजदूरों को छांट लेता है। प्रमोशन, ओवर टाईम, कामचोरी या अन्य सुविधायें देकर मैनेजमेंट अपना समर्थक गुट बना लेता है, इस गुट के लोग हर युनियन में धुसते रहते हैं। उस उद्योग में मजूदरों का जीवन गुलाम से बदतर होता है। तानाशाही तरीका जारी रहता है। उधर मालिक के पैर चाटने वाले कुत्ते अपने गले में लगे बेल्ट को फूलमाला मानकर अपने को गौरवान्वित महसूस करते रहते हैं।

नौकरशाही या सिर्फ केन्द्रीयता की पद्धति के साथ साथ एक और भी खतरा नजर आता है - ट्राटस्कीवादियों का पथ। यह सिर्फ जनवादी प्रक्रिया को जरुरत से अधिक महत्व देने का पथ है। हालांकि यह पद्धति भी जनवादी प्रक्रिया को सिर्फ कार्य पद्धति में लागू करता है। कार्यनीति तो मानो किसी अदृश्य स्थान से आ धमकती है। संगठन के बड़े आकार का दिखाकर इसकी बात टाल दी जाती है। कार्य पद्धति में जो भी जनवादी प्रक्रिया का इस्तेमाल होता है, उससे जन गायब हो जाता है और केवल वाद बचा रहता है और फिर वाद को लेकर विवाद पैदा होता है, जितने सिर उतने ही मत और उतने ही पथ। इस प्रकार बहु केन्द्रीयता से संगठन का शरीर केंसर की बिमारी का घर बन जाता है। आज के सोशलिस्ट ट्रेड युनियनों की ऐसी ही दुःस्थिति है। हालांकि इस प्रकार की ट्रेड युनियनों को पूंजीपति अधिक महत्व देते हैं, लेकिन मजदूर वर्ग की एकता की भावना का फायदा उठाते हुये नौकरशाही वाले ट्रेड युनियन अधिक कामयाब रहते हैं।

एकमात्र जनवादी केन्द्रीयता की पद्धति ही ट्रेड युनियन की सही पद्धति हो सकती है।

9) मजदूर वर्ग की सही राजनीतिक पार्टी के आभाव में तथा सही ट्रेड युनियन के नहीं रहने से आज "नेता" शब्द अपनी इज्जत आबरु खो बैठा है। स्वार्थी, अनैतिक और उच्छृंखल जीवन जीने वाले असामाजिक तत्वों के झुण्ड और गुण्डा प्रकृति के

निर्दय व्यक्ति जब माइक के सामने खड़े होकर लम्बी चौड़ी हांकने में माहिर होते हैं, दरोगा साहब से दोस्ती गांठ ते हैं और पद रुपी सिंहासन पर कब्जा रखने की शैली अख्तियार कर लेते हैं, तथा देश व प्रांत की राजधानियों में नियमित संपर्क साधते हुऐ आम जनता को आश्वासनों के भंवरजाल में घुमाते रहते हैं, तब ऐसे व्यक्ति "नेता" कहलाते हैं। ऐसे नेताओं को दिलो दिमाग से जनता नफरत करती है।

एक और प्रकार के नेता होते हैं, ये मार्क्स और लेनिन के किताबों के नाम जानते हैं और समय समय पर उन नामों को उद्धृत करते हुये अपनी विद्वता को जाहिर करते हैं। ये लोक अर्जी अपील लिखने में माहिर होते हैं। ये उत्पादन से विमुख रहते हैं। ये लोग घरेलु झगड़ों की व्याख्या भी अंर्तराष्ट्रीय और ऐतिहासिक महत्व की घट नाओं की रोशनी में करने की कोशिश करते हैं। तर्क में ये लोग रात गुजार देते हैं, जो कुछ कहते हैं करते नहीं, और जो करते हैं वह कहते नहीं, वे ज्यादा माला माल नहीं होते, फिर भी रंगीन जिंदगी जीने के शौकीन होते हैं। मजदूर इन नेताओं का विश्वास नहीं करते, ये नेता मजदूरों का विश्वास नहीं करते। ऐसे ही नेताओं से सुशोभित ट्रे ड युनियनों ने मजदूरों के जीवन को दूभर कर दिया है।

संगठ न हो या आन्दोलन, नेतृत्व का सवाल एक महत्वपूर्ण सवाल है। एक साधारण व्यक्ति के गलत विचारों या कार्यो से अधिक लोगों को नुकसान नहीं होता परन्तु नेतृत्व के गलत विचारों और कार्यो से लाखों करोड़ों जिन्दगियां बुरी तरह प्रभावित होती है। इसलिए नेतृत्व के बारे में सही जानकारी होना जरुरी है। नेतृत्व को अपने वर्ग का सबसे अधिक वर्ग संचेतन अंश होना चाहिये। यह बात पूंजीपति वर्ग पर भी उतना लागू होता है जितना मजदूर वर्ग पर।

सबसे अधिक वर्ग संचेतन होने का तरीका का जिक्र पहले ही किया गया है, यह चार सूत्रीय तरीका है - वर्ग संघर्ष, उत्पादन संघर्ष, वैज्ञानिक प्रयोग और इतिहास का अध्ययन। वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत ट्रे ड युनियनों में बगैर वर्ग संघर्ष के भी नेतागिरी चलती है। लेकिन अगर इस व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करना है तो अवश्य ही सामंतवादी पूंजीवादी आदि प्रतिक्रियावादियों के खिलाफ संघर्ष में नेतृत्व को खुद भी बहादुरी के साथ भाग लेना होगा। अक्सर देखा जाता है कि जब जनता आन्दोलन करती है तब नेतृत्व चुपचाप मुंह छि पाकर भाग जाता है। जो आदमी कर्फ्यू

और 144 धारा के जमाने में सिर के बाल नोचता है, वह ही स्थिति शांत होने पर नेता बन जाता है। इससे मजूदर आन्दोलन पूंजीपतियों की राह पर चलने लगता है।

वर्ग संघर्ष में निड रता से भाग लेना सही नेतृत्व की पहली कसौटी है। दूसरी कसौटी है - उत्पादन संघर्ष। ऐसे कामचोर आदमी जिनको उत्पादन के काम में कोई दिलचस्पी नहीं, वह नेतृत्व के लायक नहीं है। दीवाली के पहले घर में मकड़े की जाली की सफाई करने की तरह मजदूर वर्ग को अपने ट्रे ड युनियन धर से ऐसे उत्पादन विमुख नेताओं का सफाया कर देना चाहिए।

नेतृत्व तभी सही नीति निर्धारण और कार्य पद्धति का प्रयोग कर सकेगा जब वह साधारण परिस्थिति को विशेष परिस्थिति के साथ जोड़ सके। अगर हड़ताल करना है तो नेतृत्व को यह समझ होनी चाहिए कि मुख्य मुद्दा क्या होगा, हड़ताल का यह उचित समय है या नहीं, अगर नेतृत्व समय पर सही निर्णय नहीं ले सकता तो आंदोलन में मार खाने की पूरी गुंजाइश रह जायेगी। साधारण परिस्थिति की जानकारी वैज्ञानिक प्रयोग और इतिहास की जानकारी के जरिये ही हो सकती है। सफल नेतृत्व की कसौटी है - साधारण परिस्थिति की पूर्ण जानकारी और विशेष परिस्थिति में उस जानकारी को लागू करने की क्षमता। नेतृत्व को व्यक्तिगत तौर पर महत्वाकांक्षी नहीं होना चाहिए। ईमानदारी और कुर्बानी नेतृत्व के साथ श्वास-निश्वास की तरह जुड़े हुए गुण होने चाहिये तभी वह नेतृत्व लोकप्रिय हो सकता है और उस नेतृत्व पर भरोसा करके लाखों लोग जान को हथेली पर रखकर संघर्ष में कूद जायेंगे।

10) **अर्थनीतिवाद** - आर्थिक मांग के लिए संघर्ष करना अर्थनीतिवाद नहीं है, परन्तु जब संघर्ष आर्थिक मांग के लिए होता है और आर्थिक मांग के अलावा बाकी तमाम राजनैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सवालों को ताक पर रख दिया जाता है तब इस प्रकार की नीति को अर्थनीतिवाद कहा जाता है। यह एक खतरनाक नीति है। आज की ट्रे ड यूनियनें ऐसे ही खतरनाक रास्ते पर चल रही है, इससे ट्रे ड यूनियन के जीवन की सजीवता समाप्त हो चुकी है और सूखी लकड़ी पर बढ़ई द्वारा रेंदा चलाये जाने की तरह मजदूरो को जिन्दगी के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक पहलुओं में निराशाजनक कृत्रिमता लाकर उन पर पूंजीपतियों की राजनैतिक, सांस्कृतिक और समाजिक विचारों को थोपा जा रहा है।

हमें ऐसी रेंदा लगाई गई लकड़ी की जरुरत नहीं है, हम एक सजीव सुन्दर वृक्ष की तरह का जीवन आने अन्दर समा लेना चाहते हैं। पूंजीपति मजदूरों को असम्पूर्ण, विकृत कमजोर बनाकर रखना चाहते हैं पूंजीपति मजदूरों को एक सस्ते कीमत की निर्जीव वस्तु की तरह बनाकर रखना चाहते हैं, इससे उनके मालामाल होने की प्रक्रिया के सुरक्षित रहने की गारन्टी हो जाती है।

पूंजीवादी विचारों वाले अवसरवादियों ने मजदूर आंदोलन को गुमराह करने के लिए अर्थनीतिवाद को जारी किया है। इन अवसरवादियों को संशोधनवादी कहा जाता है। ये मजदूरों की वैज्ञानिक विचारधारा का विरोध करते हैं और पूंजीपतियों के बताये रास्ते पर मजदूरों को ले जाने की कोशिश करते हैं।

नतीजा यह हो रहा है कि आज देश में तमाम ट्रेड युनियनों के सामने साल में एक बार बोनस की लड़ाई लड़ने और तीन या पांच साल में एक बार वेतनमान बदलने की लड़ाई लड़ने के अलावा दूसरा कोई कार्यक्रम नहीं रह गया है। तमाम केन्द्रीय ट्रेड युनियनों का काम सिर्फ प्रमोशन के लिए सिफारिश करने या चार्जशीट का जवाब देने की दुकानदारी तक सीमित रह गया है।

उत्पादन की नीति का निर्धारण पूंजीपति करता है। इससे धड़ल्ले से मशीनीकरण का राक्षस मजदूरों की नौकरीयों को खाये जा रहा है। राजनीति करने की जिम्मेदारी ठेकेदारों, शराब ठेकेदारों मालगुजारों आदि शोषक वर्गो को सौंप दिया गया है।

संस्कृति का ठेका बम्बई के स्मगलर और दूसरे काले पैसे के पूंजीपति को दे दिया गया है, जो दु सुम-दु सुम और नंगे नाच वाले कुसंस्कृति को जन संस्कृति बनाने में ओवर टाईम कर रहे हैं।

शराब के नशे में पूरा देश बेहोश है महिलाओं पर अत्याचार जारी है और इधर ट्रेड युनियनों के पास सिर्फ एक ही कार्यक्रम है - "बोनस दो, बोनस दो" पैसा बढ़ता है मंहगाई और भी बढ़ती है, मजदूर की जेब खाली हो जाती है और सूदखोर के चुंगुल में जा फंसता है। ठेकेदार पैसा बढ़ाता है और शराब ठेकेदार उसे लूट ले जाता है। घर की औरत मार खाती है बच्चों का भूखा रहना पड़ता है मजदूर झोपड़ियों में सदा सोया रह जाता है।

आज बैंक, जीवन बीमा वगैरह उद्योगों में अर्थनीतिवाद इतना मजबूत जड़ जमा चुका है कि वहां मजदूरों के सामने अपने उद्योगो को छोड़कर दूसरे उद्योगों के मजदूरों के मामले और संघर्षो के बारे में कोई विचार ही नहीं रहता। इन उद्योगों में ट्रेड युनियन नेतृत्व मजदूरों को आत्म केन्द्रीत और संवेदनहीन बना चुका है।

अर्थनीतिवाद के एक और प्रकार का नमूना रेल उद्योग में देखने को मिलता है। यहां हर मजदूर अपने विभाग के महत्व और अपने विभाग की समस्या से ही घिरा रहता है। वहां जब गार्ड साहब हरी झंडी दिखाते हैं तब गेंगमेन अपनी लाल झंडी दिखाकर बैठ जाते हैं। वहां पर लाल हरे को मिलाकर सारे रेल मजदूरों को संगठित करने का प्रयास आज नहीं किया जा रहा है। अल्प समय के लिए 1974 के ऐतिहासिक रेल हड़ताल ने इस दिशा में एक उम्मीद को जन्म दिया था, जिसकी गाड़ी केन्द्रीय युनियनों के चक्कर में फिर से पटरी से उतर गई। इसके फलस्वरुप 146 स्वतंत्र युनियनों को इस तरह तानाशाही हमलों का शिकार होना पड़ा कि अभी तक वे फिर से खड़ी नहीं हो पाई। इस्पात उद्योग में भी इस तरह का संशोधनवादी प्रयास जारी है। इसी कारण चार्जमेन, क्रेन आपरेटर, हार्थमेन आदि मजदूरों को अलग अलग संगठनों में संगठित करने की कोशिश चल रही है, फिर भी स्टील प्लांट की इंटीग्रेटेड व्यवस्था के कारण इन प्रयासों को मैनेजमेंट का पूर्ण समर्थन नहीं मिल पा रहा है।

अर्थनीतिवाद लोग चाहे जितना भी आर्थिक मांगो के बारे में आवाज बुलन्द करें, फिर भी आज ट्रेड यूनियनों के कार्यकर्ता इस बारे में वाकिफ हैं कि :-

क) सन् 1947 या 1960 के मूल्य सूचकांक के साथ आज के मूल्य सूचकांक की तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि इन 43 सालों या 30 सालों के बीच मजदूरों का वेतन रुपयों में बढ़ा है लेकिन असली वेतन घटा है। मतलब यह हुआ कि आर्थिक संघर्ष और समझौते के बाद भी कुछ हासिल नहीं हुआ बल्कि शोषण और भी बढ़ा है।

ख) आर्थिक मांगो के बारे में ट्रेड युनियनों को दिमाग सरकार के दिमाग द्वारा परिभाषित होता है। जैसे कि हर बार वेतन संशोधन (वेजरिवीजन) में देखा जाता है कि वहां पुनर्विचार के लिए विशेष समयावधि का प्रावधान दिया रहता है। सरकार के विज्ञप्ति (नोटिफिकेशन) के अधिकार और विभिन्न कमीशनों के सिफारिशों को मजदूरों के सामने रखकर मैनेजमेंट मजदूरों और ट्रेड युनियनों को लालायित करता रहता है।

ग) सरकार विभिन्न श्रम कानूनों को गोल माल बनाकर इस व्यवस्था के अन्दर ही गुंजाइश की मरीचिका दिखाती है।

घ) उद्योग पर क्षेत्र के आधार पर वेतनमान बनाकर सरकार एक अस्थायी लक्ष्मण रेखा खींच देता है। अंग्रेजों के जमाने में जिस तरह अंग्रेज लोग रियासतों के लिए अलग अलग कानून बनाकर रियासतों की जनता के मुंह से "अंग्रेजो का कानून लागू करो" वाली मांग उठ वाने का साम्राज्यवादी तरीका अपनाये हुए थे, आज भी उसी तरीके से सरकार अर्थनीतिवाद को बढ़ावा दे रहा है। एक उद्योग के मजदूर दूसरे उद्योग के मजदूरों के समान वेतन हासिल करने की कोशिश में सारी जिन्दगी बिता देते है।

ङ) "कुछ छोड़ो-कुछ लो" (गिव एण्ड टेक) की नीति ही इसी स्थिति में जड़ पकड़ लेती है। विजय का नहीं बल्कि समझौते का पाठ पढ़ाया जाता है। जबकि हर समझौता को लागू करने की समस्या हर हमेशा बनी रहती है "इन्कलाब जिन्दाबाद" के नारे के साथ "वेतन समझौता जिन्दाबाद" के नारे से आसमान गूंजता रहता है, इन्कलाब कभी नहीं आता।

आज केन्द्रीय ट्रेड युनियनें अर्थनीतिवाद के गड्ढे में फंस चुकी है। आर्थिक मंदी के युग में कर्ण का रथ जमीन में धंसता जा रहा है, कर्ण जितना ही रथ हांकता है, रथ उतना ही गतिहीन रहता है, कर्ण अपने ही रथ में बंदी बना हुआ है।

इस हालत में नेता मजदूरों को सान्त्वना देता है - "हो रही है, बातचीत हो रही है" "कुछ मिला है" "कुछ दिला देंगे"। मजदूर अब आश्वासनों से खुश नहीं है। अब मजदूर बढ़ चला है, सेनापति पीछे। पीछे फंसा हुआ सेनापति मजदूरों को उग्रवादी कहकर वामपंथी भटकाव और पृथकतावाद की दुहाई देकर अपने को व्यवस्थारुपी भगवान के सामने निर्दोष बता रहा है। मजदूर वर्ग केन्द्रीय ट्रेड युनियनों को हटाकर स्वतंत्र ट्रेड युनियनों का निर्माण कर रहे हैं, लेकिन अधिकांश स्वतंत्र ट्रेड युनियन भी उसी राह के राही हैं।

अर्थनीतिवाद का अंधकार नहीं, आर्थिक संघर्ष के साथ साथ मुक्ति का अवलोकन भी चाहिये, एक इज्जतदार मजदूर वर्ग की प्रतिष्ट। चाहिये, नई संस्कृति की शुद्ध हवा चाहिये, एक क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन चाहिए।

इस देश के ट्रेड युनियन आंदोलन का इतिहास लगभग 100 साल पुराना है। भारत के ट्रेड यूनियन आंदोलन को उद्भव इंग्लैंड एवं अन्य विकसित पूंजीवादी देशों की प्रेरणा से ही हुआ था। विकसित पूंजीवादी देश (जहां औद्योगिक क्रांति हो चुकी है) एवं अविकसित देशों की परिस्थिति में काफी अंतर है। अविकसित देशों में ट्रेड युनियन आंदोलन यदि समस्त देशप्रेमी वर्गो को मोर्चा बनाकर साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष करने की दिशा में नहीं बढ़ता है तो बेशक अर्थनीतिवाद के गड्ढे में फंसकर विकृत रूप ले लेता है। दुर्भाग्यवश हमारे देश के ट्रेड युनियन आंदोलन की भी यही गति रही है।

अविकसित देशों में ट्रेड यूनियन आंदोलन की समस्यायें एवं उसकी जिम्मेदारियां अधिक होती है। इस हालत में, अपने देश में ट्रेड यूनियन आंदोलन के विकास के लिए काफी चर्चा की जरूरत है।

इसी चर्चा की शुरुआत के रूप में वर्तमान लेख को हम प्रस्तुत करते हैं। भविष्य में भी इन मुद्दों पर चर्चा को हम पुस्तिका स्वरूप में प्रस्तुत करते रहेंगे, ताकि हम अपनी दिशा कर्मनीति व कर्म पद्धति को तय कर सकें।